राष्ट्र के लिए ईश्वर का वरदान थे – ईश्वरचंद 'विद्यासागर'

कोलकाता में भाजपा अध्यक्ष अमित शाह के रोड शो के दौरान हुई हिंसा में मंगलवार को कॉलेज परिसर में स्थित महान दार्शनिक, समाजसुधारक और लेखक ईश्वरचंद विद्यासागर की मूर्ति तोड़ दी गई थी। जिसके लिए टीएमसी ने भाजपा कार्यकर्ताओं और समर्थकों पर आरोप लगाया है। इसी घटना का विरोध जताते हुए सांकेतिक तौर पर टीएमसी और पार्टी नेताओं ने अपने ट्विटर प्रोफाइल फोटो में विद्यासागर की तस्वीर लगाई है।

ईश्वर चन्द्र विद्यासागर का जन्म 1820 ई. में एक निर्धन ब्राह्मण परिवार में हुआ था और उन्होंने संस्कृत के छात्र के रूप में एक बेहतरीन उपलब्धि हासिल की थी। उनकी महान शिक्षाओं के लिए कलकत्ता के संस्कृत कॉलेज,जिसके वे कुछ वर्षों के लिए प्रिंसिपल रहे थे,ने उन्हें 'विद्यासागर' की उपाधि प्रदान की। वे अपने सादगीपूर्ण रहन-सहन,निर्भीक स्वभाव,आत्म-बलिदान के भाव,शिक्षा के प्रति अपने समर्पण-भाव के कारण दलितों व वंचितों के बीच एक महान व प्रसिद्ध व्यक्तित्व के रूप में उभरे। उन्होंने संस्कृत कॉलेज में आधुनिक पश्चिमी विचारों का अध्ययन आरम्भ कराया और तथाकथित निम्न जाति के छात्रों को संस्कृत पढ़ने हेतु कॉलेज में प्रवेश दिया।

निर्धन परिवार में जन्म लेकर भी उन्होंने अपने शिक्षा, संस्कार, सादगी, ईमानदारी, परिश्रम, दयालुता व स्वावलम्बन के ऐसे आदर्श प्राप्त किये, जिनके कारण वे अमर हो गये । जब वे गर्भावस्था में थे, तब उनकी माता पागल हो गयी थी । घर की आर्थिक तंगी के कारण माता का इलाज उनके पिता चाहकर भी नहीं कर पाये ।

एक दिन उनके पिता द्वार पर भिक्षा मांगने आये एक संन्यासी को देखकर यह कहकर रोने लगे कि उनके घर एक मुट्ठी अनाज भी भिक्षा में देने के लिए नहीं है । वे तो अपनी पागल पत्नी का इलाज भी इसी वजह से नहीं करा पा रहे हैं ।

संन्यासी ने हंसते हुए कहा- "अरे बावले ! तेरी पत्नी तो एक तेजस्वी बालक के गर्भ में आ जाने के कारण उसके तेज से पागल-सी हो गयी है । घबराने की कोई बात नहीं, सब कुछ ठीक हो जायेगा ।" हुआ भी ठीक वैसा ही, जैसा कि उस संन्यासी ने कहा था । तेजस्वी ईश्वरचन्द्र का जन्म होते ही माता की अवस्था सामान्य हो गयी ।

वे अपनी धार्मिक तथा दयालु विचारों वाली माता से रामायण, महाभारत, श्रवण की मातृभक्ति तथा वीर शिवा की कहानियां सुना करते थे । पांच वर्ष की अवस्था में गांव की पाठशाला में भरती होने के बाद उनकी बुद्धिमानी और सदचरित्रता से सभी अध्यापक अत्यन्त प्रभावित थे । कक्षा में यदि कोई लड़का कमजोर या असहाय होता, तो उसके पास स्वयं जाकर उसे पढ़ा देते और उसकी यथासम्भव सहायता करते ।

वे अपने पिता की कठोरता को भी उनका आशीर्वाद समझते थे । पढ़ाई के समय उनके पिता इतने कठोर हो जाया करते थे कि कई बार विद्यासागर की आखों में सरसों या मिट्टी का तेल भर दिया करते थे । कभी-कभी तो उनकी चोटी को रस्सी से बांधकर खूंटी में अटका दिया करते थे, ताकि विद्यासागर को पढ़ते समय नींद न आ जाये । यद्यपि पिता की कठोरता उन्हें कभी-कभी बहुत खटकती भी थी, किन्तु वे यह भी मानते थे कि इसी कठोरता के फलस्वरूप वे अपनी कक्षा में हमेशा अबल आते हैं ।

बाल्यावस्था में वे हकलाते थे, इस कारण अंग्रेज अध्यापक ने उन्हें दूसरी श्रेणी में पास किया । इस बात पर विद्यासागर इतना अधिक रोये कि उन्होंने कई दिनों तक ठीक से भोजन ग्रहण तक नहीं किया । स्कूली शिक्षा पूरी करने के बाद उनके पिता घोर आर्थिक तंगी के बाद भी उन्हें कलकत्ता ले गये । अपने गांव से पैदल ही कलकत्ता पहुंचे ।

इस गरीब पिता-पुत्र के पास पैसे तो थे नहीं, अत : कुछ दिन तंगहाली में गुजारे । बड़ी भागदौड़ के बाद पिता को दो रुपये महीने की नौकरी मिली । विद्यासागर की पढ़ाई शुरू हो गयी । पिताजी की मेहनत और ईमानदारी के कारण उनकी तनख्वाह दो रुपये से दस रुपये हो गयी । ईश्वरचन्द्र अब संस्कृत कॉलेज के विद्यार्थी थे । इसी बीच काम की तलाश कर वे पढ़ाई-लिखाई के साथ जो रुपये कमाने लगे, उसे अपनी मां को भेजने लगे ।

पंडित ईश्वरचंद्र विद्यासागर के उत्साह, आकांक्षा और बलिदान के कारण, कॉलेज ने 1879 में स्नातक स्तर तक की शिक्षा के लिए विश्वविद्यालय को मान्यता प्राप्त कराई। बीएल कोर्स के लिए कॉलेज को 1882 में मान्यता मिली। इस कॉलेज के खुलने से उच्च शिक्षा में यूरोपियों का एकाधिकार समाप्त हो गया। इस कॉलेज का उद्देश्य मध्यम वर्गीय हिंदुओं को कम पैसों में उच्च शिक्षा प्रदान करना था। इस कॉलेज के शुरु होने से पहले तक उच्च शिक्षा के लिए विदेश जाना पड़ता था। लेकिन जिनके पास विदेश जाने के लिए पैसे नहीं होते थे, वो उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते थे।

अपने परिवार को आर्थिक सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से ही ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने अध्यापन कार्य प्रारंभ किया। वर्ष 1839 में ईश्वर चन्द्र ने सफलता पूर्वक अपनी क़ानून की पढ़ाई संपन्न की। वर्ष 1841 में मात्र इक्कीस वर्ष की आयु में उन्होंने संस्कृत के शिक्षक के तौर पर 'फ़ोर्ट विलियम कॉलेज' में पढ़ाना शुरू कर दिया। पाँच साल बाद 'फ़ोर्ट विलियम कॉलेज' छोड़ने के पश्चात् ईश्वर चन्द्र विद्यासागर 'संस्कृत कॉलेज' में बतौर सहायक सचिव नियुक्त हुए। पहले ही वर्ष उन्होंने शिक्षा पद्धति को सुधारने के लिए अपनी सिफारिशें प्रशासन को सौप दीं। लेकिन उनकी रिपोर्ट ने उनके और तत्कालीन कॉलेज सचिव रसोमय दत्ता के बीच तकरार उत्पन्न कर दी, जिसकी वजह से उन्हें कॉलेज छोड़ना पड़ा। लेकिन 1849 में ईश्वर चन्द्र विद्यासागर को साहित्य के प्रोफ़ेसर के रूप में 'संस्कृत कॉलेज' से एक बार

फिर जुड़ना पड़ा। इसके बाद 1851 में वह इस कॉलेज के प्राधानचार्य नियुक्त किए गए, लेकिन रसोमय दत्ता के अत्यधिक हस्तक्षेप के कारण ईश्वर चन्द्र विद्यासागर को 'संस्कृत कॉलेज' से त्यागपत्र देना पड़ा, जिसके बाद वह प्रधान लिपिक के तौर पर दोबारा 'फ़ोर्ट विलियम कॉलेज' में शामिल हुए।

ईश्वरचंद्र विद्यासागर का निधन 29 जुलाई, 1891 को हो गया था, जिसके बाद साल 1917 में कॉलेज का नाम बदलकर विद्यासागर कॉलेज किया गया। इसी दौरान ये मूर्ति यहां स्थापित की गई थी।

पहले संस्कृत कॉलेज में केवल परंपरागत विषयों का ही अध्ययन होता था। संस्कृत के अध्ययन पर भी ब्राह्मणों का एकाधिकार था और तथाकथित निम्न जातियों को संस्कृत के अध्ययन की अनुमति नहीं थी। उन्होंने बंगाली भाषा के विकास में भी योगदान दिया था और इसी योगदान के कारण उन्हें आधुनिक बंगाली भाषा का जनक माना जाता है। वे कई समाचार-पत्रों व पत्रिकाओं के साथ भी गंभीरता से जुड़े हुए थे और सामाजिक सुधारों की वकालत करने वाले कई महत्वपूर्ण लेख भी लिखे।

उनके सम्मान में भारतीय डाक विभाग ने 26 सितंबर, 1970 को डाक टिकट भी जारी किया था।

उनका सबसे महत्वपूर्ण योगदान विधवाओं की स्थिति में सुधार और स्त्री शिक्षा का प्रसार था।विधवा-पुनर्विवाह को क़ानूनी वैधता प्रदान करने वाले अधिनियम को पारित कराने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। 1856 ई. में कलकत्ता में हुए प्रथम विधवा-पुनर्विवाह में वे व्यक्तिगत रूप से शामिल हुए थे। विधवा-पुनर्विवाह एवं स्त्री शिक्षा के लिए किये जाने वाले प्रयासों के कारण रूढ़िवादी हिन्दुओं द्वारा उन पर हमले भी किये गए।1855 ई. में जब उन्हें स्कूल-निरीक्षक/इंस्पेक्टर बनाया गया तो उन्होंने अपने

अधिकार-क्षेत्र में आने वाले जिलों में बालिकाओं के लिए स्कूल सहित अनेक नए स्कूलों की स्थापना की थी। उच्च अधिकारियों को उनका ये कार्य पसंद नहीं आया और अंततः उन्होंने अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया। वे बेथुन के साथ भी जुड़े हुए थे ,जिन्होनें 1849 ई. में कलकत्ता में स्त्रियों की शिक्षा हेतु प्रथम स्कूल की स्थापना की थी

विचार और शिक्षाएं

• उन्होंने संस्कृत कॉलेज में आधुनिक पश्चिमी विचारों का अध्ययन आरम्भ कराया।

उस समय हिन्दु समाज में विधवाओं की स्थिति बहुत ही सोचनीय थी. उन्होनें विधवा पुनर्विवाह के लिए लोगमत तैयार किया. उन्हीं के प्रयासों से साल 1856 में विधवा-पुनर्विवाह कानून पारित हुआ. उन्होंने अपने इकलौते पुत्र का विवाह एक विधवा से ही किया.

वे कई समाचार-पत्रों व पत्रिकाओं के साथ भी गंभीरता से जुड़े हुए थे और सामाजिक सुधारों की वकालत करने वाले कई महत्वपूर्ण लेख भी लिखे।

उन्होंने बंगाली भाषा के विकास में भी योगदान दिया था और इसी योगदान के कारण उन्हें आधुनिक बंगाली भाषा का जनक माना जाता है।

उन्होंने स्त्री-शिक्षा और विधवा विवाह पर काफ़ी ज़ोर दिया। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने 'मेट्रोपोलिटन विद्यालय' सहित अनेक महिला विद्यालयों की स्थापना करवायी तथा वर्ष 1848 में वैताल पंचविंशतिनामक बंगला भाषा की प्रथम गद्य रचना का भी प्रकाशन किया। नैतिक मूल्यों के संरक्षक और शिक्षाविद विद्यासागर जी का मानना था कि अंग्रेज़ी और संस्कृत भाषा के ज्ञान का समन्वय करके ही भारतीय और पाश्चात्य परंपराओं के श्रेष्ठ को हासिल किया जा सकता है।

उन्होंने बंगाली अल्फाबेट को दुबारा आकार दिया. बंगाली टॉपोग्राफी में सुधार किया.

अपने समाज सुधार योगदान के अंतर्गत ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने देशी भाषा और लड़कियों की शिक्षा के लिए स्कूलों की एक शृंखला के साथ ही कलकत्ता में 'मेट्रोपॉलिटन कॉलेज' की स्थापना भी की। उन्होंने इन स्कूलों को चलाने में आने वाले खर्च का बीड़ा उठाया और अपनी बंगाली में लिखी गई किताबों, जिन्हें विशेष रूप से स्कूली बच्चों के लिए ही लिखा गया था, की बिक्री से फंड अर्जित किया। ये किताबें हमेशा बच्चों के लिए महत्त्वपूर्ण रहीं, जो शताब्दी या उससे भी अधिक समय तक पढ़ी जाती रहीं। जब विद्यासागर जी कलकत्ता के संस्कृत कॉलेज के प्रधानाचार्य बनाये गए, तब उन्होंने कॉलेज सभी जाति के छात्रों के लिए खोल दिया। ये उनके अनवरत प्रचार का ही नतीजा था कि 'विधवा पुनर्विवाह क़ानून-1856' आखिरकार पारित हो सका। उन्होंने इसे अपने जीवन की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि माना था। विद्यासागर जी ने अपने इकलौते पुत्र का विवाह भी एक विधवा से ही किया। उन्होंने 'बहुपत्नी प्रथा' और 'बाल विवाह' के ख़िलाफ़ भी संघर्ष छेड़ा।

कुछ यादगार संस्मरण

बात उन दिनों की है जब ईश्वरचन्द्र विद्यासागर 'संस्कृत कॉलेज' के आचार्य थे। एक बार विद्यासागर जी किसी कार्य से 'प्रेसीडेंट कॉलेज' के अंग्रेज़ आचार्य कैर से मिलने गए। जब विद्यासागर जी ने कैर के कमरे में प्रवेश किया तो उनका स्वागत करना तो दूर, कैर जूते पहने मेज पर पैर फैलाए बैठा रहा। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर को ये सब बड़ा अप्रिय लगा, किंतु वे चुपचाप इस अपमान को सहन कर गए और आवश्यक चर्चा कर वापस लौट आए। इस घटना के कुछ दिनों बाद किसी काम से कैर भी विद्यासागर के कॉलेज आया। उन्हें देखकर विद्यासागर जी ने चप्पलों सहित अपने पैर उठाकर मेज पर फैला लिए और आराम से कुर्सी पर बैठे रहे। उन्होंने कैर से बैठने के लिए भी नहीं कहा। कैर ने उनके इस व्यवहार की शिकायत लिखित रूप से शिक्षा परिषद के सचिव डॉ. मुआट से की। तब डॉ. मुआट कैर को लेकर विद्यासागर के पास गए और उनसे कारण पूछा। इस पर विद्यासागर जी ने कहा- "हम भारतीय अंग्रेज़ों से ही यूरोपीय शिष्टाचार सीखते हैं। जब मैं इनसे मिलने गया था तो ये इसी तरह बैठे थे। मैंने इसे यूरोपीय शिष्टाचार समझा और इसका अनुसरण किया। इन्हें नाराज करने का मेरा कोई इरादा नहीं था।" कैर ने शर्मिंदा होकर विद्यासागर जी से क्षमा मांगी।

एक बार ईश्वर चन्द्र विद्यासागर को इंग्लैंड में एक सभा की अध्यक्षता करनी थी। उनके बारे में यह मशहूर था कि उनका प्रत्येक कार्य घड़ी की सुई के साथ पूर्ण होता है अर्थात् वे समय के बहुत पाबंद थे। वे लोगों से भी यही अपेक्षा रखते थे कि वे अपना कार्य समय पर करें। विद्यासागर जी जब निश्चित समय पर सभा भवन पहुँचे तो उन्होंने देखा कि लोग सभा भवन के बाहर घूम रहे हैं और कोई भी अंदर नहीं बैठा है। जब उन्होंने इसका कारण पूछा तो उन्हें बताया गया कि सफाई कर्मचारियों के न आने के कारण अभी भवन की सफाई नहीं हुई है। यह सुनते ही विद्यासागर जी ने एक क्षण भी बिना गंवाए झाड़ू उठा ली और सफाई कार्य प्रारम्भ कर दिया। उन्हें ऐसा करते देख उपस्थित लोगों ने भी कार्य शुरू कर दिया। देखते ही देखते सभा भवन की सफाई हो गई और सारा फ़र्नीचर यथास्थान लगा दिया गया। जब सभा आरंभ हुई तो ईश्वर चन्द्र विद्यासागर बोले- "कोई व्यक्ति हो अथवा राष्ट्र, उसे स्वावलंबी होना चाहिए। अभी आप लोगों ने देखा कि एक-दो व्यक्तियों के न आने से हम सभी परेशान हो रहे थे। संभव है कि उन व्यक्तियों तक इस कार्य की सूचना न पहुँची हो या फिर किसी दिक्कत के कारण वे यहाँ न पहुँच सके हों। क्या ऐसी दशा में आज का कार्यक्रम स्थगित कर दिया जाता ? यदि ऐसा होता तो कितने व्यक्तियों का आज का श्रम और समय व्यर्थ हो जाता। सार यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वावलंबी होना चाहिए और वक्त पड़ने पर किसी भी कार्य को करने में संकोच नहीं करना चाहिए।"

यह प्रसंग ब्रिटिश हुकूमत से जुड़ा है। बंगाल में नील की खेती करने वाले अंग्रेज़ों, जिन्हें 'नील साहब' या 'निलहे साहब' भी कहा जाता था, के अत्याचार बहुत बढ़ गये थे। लोगों का जीवन नर्क बन गया था। इसी जुल्म के ख़िलाफ़ कहीं-कहीं आवाजें भी उठने लगी थीं। ऐसी ही एक आवाज को कलकत्ता रंगमंच के कुछ युवा कलाकार बुलंदी की ओर ले जाने की कोशिश में थे। ये कलाकार अपने नाटकों के द्वारा अंग्रेज़ों की बर्बरता का मंचन लोगों के बीच कर विरोध प्रदर्शित करते रहते थे। ऐसे ही एक मंचन के दौरान इन युवकों ने ईश्वर चन्द्र विद्यासागर को भी आमंत्रित किया। उनकी उपस्थिति में युवकों ने इतना सजीव अभिनय प्रस्तुत किया कि दर्शकों के रोंगटे खड़े हो गये। विशेषकर निलहे साहब की भूमिका निभाने वाले युवक ने तो अपने चरित्र में प्राण डाल दिये थे। अभिनय इतना सजीव था कि विद्यासागर जी भी अपने पर काबू नहीं रख सके और उन्होंने अपने पैर से चप्पल निकाल कर उस

अभिनेता पर दे मारी। सारा सदन भौचक्का रह गया। उस अभिनेता ने विद्यासागर जी के पाँव पकड़ लिए और कहा कि मेरा जीवन धन्य हो गया। इस पुरस्कार ने मेरे अभिनय को सार्थक कर दिया। आपके इस प्रहार ने निलहों के साथ-साथ हमारी ग़ुलामी पर भी प्रहार किया है। विद्यासागर जी ने उठ कर युवक को गले से लगा लिया। सारे सदन की आँखें अश्रुपूरित हो चुकी थीं।